संलेखना–संथारा

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जैसी दृष्टि होती है वैसी सृष्टि होती है। जीवन से लेकर मृत्यु तक विचारों का प्रवाह चलता रहता है। जैसा विचार होता है वैसा ही संसार बन जाता है। यदि विचार अच्छे हैं तो सब कुछ अच्छा ही दिखाई देता है। यदि विचार बुरे हैं तो अच्छी चीज भी बुरी दिखाई देती हैं। दार्शनिक भाषा में इसे राग–द्वेष कहते हैं। जैन धर्म में जैसे जीवन जीना एक कला है जीने की कला इसी तरह मरने की भी कला है। वह कला है संलेखना अथवा संथारा। मृत्यु का आह्वान किया जाता है। मृत्यु का प्रेमपूर्वक वरण किया जाता है।

जैन दर्शन के अनुसार जीवन का अन्तिम लक्ष्य है––आत्मा के सत्य स्वरूप की प्राप्ति। उस पर कर्मों के जो आवरण आये हुये हैं, उन्हें क्षीण करते हुये आत्मोत्थान की दिशा में बढ़ते जाना साधना की यात्रा है। सांसारिक कार्य जो देह से सधते हैं, वे तो प्रासंगिक हैं, आध्यात्मिक दृष्टि से देह का यथार्थ उपयोग, संवर तथा निर्जरामूलक धर्म का अनुसरण है। उपासक या साधक अपनी देह की परिपालना इसलिए करता है कि वह उसके अधिष्ठान में सहयोगी है। शरीर क्षीयमाण है। वृद्धावस्था में शरीर भारस्वरूप लगने लगता है। ऐसी दशा में जैन दर्शन साधक को एक मार्ग देता है–वह मार्ग है संलेषणा का।

संलेषणा का अर्थ शरीर एवं कषायों को कृश करना है। संलेहणा– झूसणाराहणाए’ संलेखणा, जोषणा और आराधना तीन शब्द प्रुक्त हैं। जोषणा का अर्थ प्रीतिपूर्वक सेवन है। आराधना का अर्थ अनुसरण करना या जीवन में उतारना है अर्थात् संलेषणा व्रत का प्रसन्नतापूर्वक अनुसरण करना। इस व्रत में जीवन भर के लिये आहार त्याग तो होता ही है, साधक लौकिक, पारलौकिक कामनाओं को भी छोड़ देता है। मरणकाल के उपस्थित होने पर प्रीतिपूर्वक नियम को सल्लेखना माना है। उपसर्ग, दुर्भिक्ष, बुढ़ापा, रोग आदि व्याधियों के उपस्थित होने पर धर्म की रक्षा के लिए शरीर का परित्याग करने को संल्लेखना बताया है।

संलेखना और समाधिमरण ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। श्रावक और श्रमण दोनों के लिए संलेखना का प्रतिपादन किया है। श्वेताम्बर जैन आगम साहित्य और आगमेतर साहित्य में संल्लेखना को द्वादश व्रतों में नहीं गिना है। इसलिए समाधिवरण श्रमण के लिए और संलेखना गृहस्थ के लिए है यह कथन समीचीन नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि आगम साहित्य में अनेक श्रमणों के द्वारा संलेखना ग्रहण करने का प्रमाण समुपलब्ध है। जिस श्रावक में आत्म रति व्याप्त हो जाती है वह जीवन और मृत्यु की कामना से ऊपर उठ जाता है। न उसे जीवन की चाह रहती है और न मृत्यु से भय। सहज भाव से जब भी मौत आती है वह उसका शान्तिपूर्वक वरण करता है।

गीता में भी मृत्यु को आचार पालन की तरह जीवन में उतारने की प्रेरणा दी गयी है। जब शरीर के बचने की कोई गुंजाईश नहीं रहे तो मनुष्य को मृत्यु का वरण कर लेना चाहिए। मृत्यु से पूर्व मनुष्य को मृत्यु का आभास होने लगता है। भोजन में कई तरह के रस होते हैं जिससे शरीर स्वस्थ रहता है। संलेखना की अवस्था में भेद विज्ञान का ज्ञान हो जाता है। आत्मा भिन्न शरीर भिन्न है यही ज्ञान भेद विज्ञान है। आत्मा और शरीर की भिन्नता महसूस होने पर संलेखना प्रारम्भ कर देनी चाहिए। खाद्य पदार्थ का धीरे–धीरे त्याग कर देना चहिए। द्रव्यों के त्याग की परम्परा प्रारम्भ हो जाती है। एक–एक द्रव्य को छोड़ते हुए सभी द्रव्यों को छोड़ दिया जाता है। शरीर धीरे–धीरे क्षीण हो जाता है। आयुष्य कर्म को भोगकर आत्मा शरीर को छोड़ देती है। इस जन्म में कितना आयुष्य है और आगे जन्म में कितना आयुष्य रहेगा यह पूर्व निश्चित होता है।

आयुष्य कर्म के क्षीण होने पर आत्मा और शरीर की भिन्नता प्रकट हो जाती है। इस अवस्था में जड़ पदार्थों का त्याग हो जाता है। संथारा मृत्यु का वरण नहीं है। यह मारने के लिए नहीं बल्कि मरने वाला स्वयं अपनी इच्छानुसार इसका वरण करता है। यह इच्छा मृत्यु है। इसको करने से जीव उच्च गति को प्राप्त करता है। जिस भाव में, जिस लेश्या में वह होता है वैसा आगामी जन्म में योनि की प्राप्ति होती है। इसे इच्छा वरण मृत्यु कहा जाता है। मृत्यु को सहज स्वीकार किया जाता है। मृत्यु से डरना नहीं चाहिए। मृत्यु का स्वागत करना चाहिए।

संलेखना एवं संथारा में आत्मशुद्धि का चिंतन होता है। तेजस शरीर में भाव शुद्धि हो जाती है। आगामी जीवन में आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने के लिए यह पूर्व तैयारी है।

जैन धर्म में संलेखना को आत्महत्या नहीं माना गया है। संलेखना मृत्यु का श्रृंगार है। संलेखना और आत्महत्या में शरीर त्याग समानरूप से है, पर शरीर को कौन, कैसे और क्यों छोड़ रहा है? यह महत्त्वपूर्ण बात है। आत्महत्या क्रोध, दुःख, शोक, मोह आदि उग्र मानसिक आवेगों में की जाती है, जिसे जीवन में कोई सहारा नहीं दिखता, जो जीवन से निराश हो जाता है, वह आत्महत्या करता है। यह व्यक्ति की कमजोरी और संकल्पशक्ति की कमी का परिचायक है। संलेखनापूर्वक आमरण अनशन आत्मा का हनन नहीं, उसका विकास है, उन्नयन और उत्थान है। इस स्थिति में साधक काम, क्रोध, राग द्वेष, मोह आदि से ऊपर उठ जाता है।